प्राकृत-कोश-परम्परा : स्वरूप, वैशिष्ट्य एवं प्रांसगिकता

-प्रो. वीरसागर जैन

महाकवि जयशंकर प्रसाद ने अपने उपन्यास 'कंकाल' में एकदम ठीक लिखा है कि 'भारतीय संस्कृति और इतिहास का ज्ञान तब तक अधूरा ही रहेगा, जब तक कि उसका पालि और प्राकृत भाषाओं से सम्बन्ध न जोड़ा जाए।' प्राकृत भाषा में रचित वाङ्मय गुणवत्ता और परिमाण दोनों की दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। उसे देखकर महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के भी वे उद्गार स्मरण में आ जाते हैं जो उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्दी-काव्यधारा' में बड़े ही भावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किये हैं कि सृष्टि की रचना तो पता नहीं किसने की होगी, पर साहित्य की सृष्टि तो केवल जैन कवियों ने ही की है। जैन कवियों ने प्राकृत जैसी लोकभाषा का आश्रय लेकर साहित्य की हर विधा में बेशुमार साहित्य की रचना करके भारतीय वाङ्मय के भण्डार को लबालब भर दिया है। हमारा विचारणीय विषय यहाँ मात्र उसकी कोश-परम्परा है।

किसी भी भाषा या विषय के समीचीन ज्ञान हेतु कोश की महती उपयोगिता स्वीकार की गई है। भाषा का तो रक्षण, संरक्षण, पोषण, संपोषण कोश द्वारा ही होता है। जो कोश नहीं जानते, वे वक्ता और लेखक निर्धन माने गए हैं। यथा-

“कोषश्चैव महीपानां कोशश्च विदुषामपि।

उपयोगो महान्नेष क्लेशस्तेन विना भवेत्॥"

अर्थ- राजाओं को 'कोष' की और विद्वानों को 'कोश' की महान आवश्यकता होती है, अन्यथा उन्हें बड़ा कष्ट उठाना होता है।

आज के वक्ताओं और लेखकों को उक्त श्लोक पर गम्भीरतापूर्वक चिंतन करना चाहिए और अपना कोशज्ञान समृद्ध करना चाहिए। प्राचीनकाल में तो कोशज्ञान शिक्षा का अनिवार्य अंग माना जाता था।

कोश की आवश्यकता इस बात में भी है कि उसमें अर्थ का अनुशासन किया जाता है। कुछ भाषाविद् तो कोश को व्याकरण से भी अधिक बलवान मानते हैं, क्योंकि व्याकरण यद्यपि प्रामाणिक होता है परन्तु उससे सभी शब्दों की सिद्धि नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में उन शब्दों के साधुत्व का बोध कोश से ही किया जाता है। डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री ने भी लिखा है कि- "यथार्थ में शब्द के सम्बन्ध में प्रत्येक प्रकार की जानकारी देनेवाला कोश ही प्रामाणिक माना जाता है। कोश केवल शब्दों की संकलना मात्र नहीं है उसमें शब्द के प्राकृत रूप से लेकर उच्चारण, व्युत्पत्ति, लिंग, धातुगत अर्थ, पर्यायवाची शब्द तथा व्याकरणिक निर्देश यथास्थान किया जाता है।"

कोश हमारे विचारों को यथावत् रूप में दूसरों तक प्रचारित प्रसारित करता है, क्षेत्र काल की मर्यादाओं तक को लाँघ जाता है -यह भी कोश की महती उपयोगिता ही है। विभिन्न मतों, विषय क्षेत्रों एवं कालखण्डों के अनुसार शब्दों के अर्थ बदल जाया करते हैं। यथा सन्धि, गुण, वृद्धि योग, ग्राम आगम, आरम्भ, उपयोग, आदेश, भावना, आदि शब्दों के अर्थ विषयानुसार पृथक्-पृथक् होते हैं। ऐसी स्थिति में एक अच्छा कोश ही हमारा परम मित्र सिद्ध होता है।

प्राकृत भाषा यद्यपि एक लोक भाषा है, अतः उसमें अत्यन्त प्राचीनकाल से तो आज जैसे कोशग्रन्थों की रचना का कोई प्रयास नहीं दिखाई देता, परन्तु संग्रह-ग्रन्थों के रूप में ही सही कोशग्रन्थों की रचना हो अवश्य रही थी। प्राचीन आगम-ग्रन्थों में हमें शब्द और उसके पर्यायवाचियों को भी संग्रहीत करने का प्रयास स्पष्ट दिखाई देता है। 'कषायपाहुड' 'भगवतीसूत्र' आदि दिगम्बर-श्वेताम्बर आगमों में जो क्रोध-मानादि के पर्यायवाची गिनाए गए हैं, वह कोश-शैली का ही एक उदाहरण है । प्रमाणस्वरूप 'कसायपाहुड' की निम्नलिखित गाथा द्रष्टव्य है -

“कोहो य कोव रोसो च अक्खम संजलन कलह-कडीया।

झंझा दोस विवादो दस कोहेयट्ठिया होति ॥“

अर्थ- क्रोध, कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, फंझा, दोष, और विषाद- ये दस क्रोध के एकार्थवाची हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आगम ग्रन्थों में कोश-विद्या के बीज भरे पड़े हैं। जो भी हो, यहाँ हम केवल उन्हीं ग्रन्थों को कोश-ग्रन्थ कहेंगे जिनका प्रणयन स्वतन्त्र रूप से कोश-ग्रन्थ के रूप में हुआ है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि प्राकृतभाषा के अनेक प्राचीन कोश-ग्रन्थ आज काल-कवलित हो चुके हैं क्योंकि हेमचन्द्रसूरि ने अपनी 'देसीनाममाला' में देवराज, गोपाल, द्रोण, अभिमानचिह्न, पादलिप्ताचार्य, शीलांक आदि अनेक कोशकारों व उल्लेख किया है, परन्तु आज हमें उनके कोश-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। संभव है कि ऐसे ही और भी अनेक कोशकार हुए हों और उनके कोश-ग्रन्थ काल के ग्रास बन गए हों । डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने भी ऐसी ही संभावना व्यक्त करते हुए लिखा है कि- “देसीनाममाला में आए हुए उद्धरणों से इतना स्पष्ट है कि प्राकृत भाषा में अन्य कोश-ग्रन्थ भी लिखे गये हैं।“

प्राकृत कोश-ग्रन्थों की उपलब्ध परम्परा के कतिपय अनर्घ्य रत्न निम्नानुसार हैं-

1. **पाइयलच्छीनाममाला** - इसकी रचना विक्रम सम्वत् 1029 में महाकवि धनपाल ने की है। इसमें 279 गाथाओं में 998 शब्दों का संकलन है। प्राकृत भाषा का यह सर्वाधिक प्राचीन उपलब्ध शब्दकोश है, जो विद्यार्थियों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होता है। आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने प्रशंसा की है।

2. **देशीनाममाला**- इसकी रचना सन् 1159 में हेमचन्द्रसूरि ने की थी। आठ वर्गों और 783 गाथाओं में निबद्ध इस कोश की स्वयं ग्रन्थकार ने एक संस्कृत-व्याख्या भी लिखी है। इस महत्त्वपूर्ण कोश में 3978 ऐसे देशी शब्दों का संकलन है जो न व्याकरण से व्युत्पन्न होते हैं और न संस्कृत कोशों में पाये जाते हैं। इसका अपरनाम 'रयणावली' भी है।
3. **उक्तिव्यक्तिप्रकरण**- इसकी रचना विक्रम की 12 वीं शताब्दी में पण्डित दामोदर ने की है। इसे भी एक देशी शब्द संग्रह ही समझना चाहिए।
4. **उक्तिरत्नाकर** - इसकी रचना विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में साधु सुन्दरमणि ने की है। इस ग्रन्थ को 'प्रयोगप्रकाश' और 'औक्तिकपद' नामों से भी जाना जाता है। देशी शब्दों के संस्कृत रूप जानने के लिए यह ग्रन्थ बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होता है।
5. **अभिधानराजेन्द्रकोश** - प्राकृत जगत् के इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण कोश का निर्माण श्वेताम्बर साधु श्री विजय राजेन्द्रसूरि ने सन् 1946 से लेकर सन् 1960 तक चौदह वर्ष की अवधि अथक परिश्रम द्वारा किया है। बड़े ही विशाल रूप में सात खण्डों में उपलब्ध इस कोश का अवलोकन मात्र ही यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि कोशकार ने कितना भारी परिश्रम किया होगा। प्राच्यविद्या के सुप्रसिद्ध विद्वान सिल्वां सेवी का कथन है कि "प्राच्यविद्या का कोई जिज्ञासु इस आश्चर्यजनक ग्रन्थ की अनदेखी नहीं कर सकता। अपने विशेष क्षेत्र में इसने कोशविद्या के रत्न पीटर्सवर्ग कोश को भी अतिक्रांत कर दिया है। इस कोश में प्रमाण और उद्धरणों से पुष्ट न केवल सारे शब्द ही आकलित हैं, अपितु शब्दों से परे जो विचार विश्वास, अनुश्रुतियाँ हैं उनका सर्वेक्षण भी इसमें है। "86 हजार प्राकृत शब्दों और कुल 10,560 पृष्ठों के इस महाकोश का प्रकाशन रतलाम (म.प्र.) से हुआ है। इस कोश में एक-एक शब्द पर प्राकृत-आगमों के आधार से तीस-तीस चालीस-चालीस पृष्ठों तक के व्याख्यान संकलित कर रखे हैं। डॉ. जगदीशचन्द्र जैन के अनुसार जैन आगम-साहित्य का अध्ययन करने के लिए यह कोश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। डॉ. ग्रियर्सन ने भी इस कोश के सम्बन्ध में लिखा है कि "यह विश्वकोश एक सन्दर्भ ग्रन्थ की भाँति तथा जैन प्राकृत के अध्ययन के निमित्त अतीव मूल्यवान् है। कहते हैं कि इस कोश का एक संक्षिप्त संस्करण स्वयं विजय राजेन्द्र सूरि ने 'पाइयसद्दंबुहि' (प्राकृतशब्दाम्बुधि) के नाम से तैयार किया था, किन्तु वह अद्यावधि प्रकाशित नहीं हुआ है, जो होना चाहिए।
6. अर्धमागधी कोश - इसकी रचना शतावधानी मुनि रत्नचन्द्र ने सन् 1923 से लेकर 1938 तक चौदह वर्षों की अवधि में की है। पाँच भागों में विभाजित इस कोश में 'अभिधानराजेन्द्र' की बोझिलता को और कुछ अन्य कमियों को भी परिमार्जित करने का प्रयत्न किया गया है तथा सुमेरू, जम्बुद्वीप, लवणसमुद्र आदि के अनेक चित्र देकर रोचक बनाने का प्रयास भी किया गया है। लगभग 4500 पृष्ठों के इस कोश का प्रकाशन एस. एस. जैन कान्फ्रेंस, इन्दौर से हुआ है।
7. पाइयसद्दमहण्णवो - इसकी रचना कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पण्डित हरगोविन्द दास विक्रमचन्द सेठ ने अकेले ही अत्यन्त कुशलतापूर्वक की है। इसके बाद उन्होंने स्वयं ही सन् 1928 में इसका

प्रकाशन भी कराया था। सेठजी का कोशजगत् को यह अप्रतिम योगदान है। समीक्षकों एवं इतिहासकारों ने इस कोश को प्राकृत का एक कोश कहा है। दरअसल इस कोश के लेखक पण्डितजी ने 'अभिधान राजेन्द्र कोश' की कटु समीक्षा की थी और उसकी कमियों को दूर करने का संकल्प लेकर ही इस कोश की रचना प्रारंभ की थी। वे न्याय-व्याकरण में न्यायतीर्थ होने के कारण प्रकाण्ड पण्डित तो थे ही, कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राध्यापक होने के कारण आधुनिक शैली से भी भलीभाँति परिचित थे, इसीलिए उनका यह कोश सर्वाधिक लोकप्रिय सिद्ध हुआ। 'अभिधान-राजेन्द्र-कोश' विशालकाय अवश्य है, लेकिन कोश की कसौटी पर बहुत श्रेष्ठ सिद्ध नहीं होता। पण्डित हरगोविन्द दास सेठ ने उसके विषय में एकदम ठीक ही लिखा है- "अभिधान राजेन्द्र कोश का निर्माण केवल पचहत्तर से भी कम प्राकृत जैन पुस्तकों के ही, जिनमें अर्द्धमागधी के दर्शन विषयक ग्रन्थों की बहुलता है, आधार पर किया गया है और प्राकृत की ही इतर मुख्य शाखाओं के तथा विभिन्न विषयों के अनेक जैन तथा जैनेतर ग्रन्थों में से एक का भी उपयोग नहीं किया गया है। इससे यह कोश व्यापक न होकर प्राकृत भाषा का भी एक-देशीय कोश हुआ है। इसके सिवाय प्राकृत तथा संस्कृत ग्रन्थों के विस्तृत अंशों को और कहीं-कहीं छोटे-बड़े सम्पूर्ण ग्रन्थ को ही अवतरण के रूप में उद्धृत करने के कारण, पृष्ठ-संख्या में बहुत बड़ा होने पर भी शब्द संख्या में ऊन ही नहीं, बल्कि आधारभूत ग्रन्थों में आए हुए कई उपर्युक्त शब्दों को छोड़ देने से और विशेषार्थहीन अतिदीर्घ सामाजिक शब्दों की भर्ती से वास्तविक शब्द संख्या में यह कोश अतिन्यून भी है।

8. **प्राकृत-हिन्दी-कोश** - इसका निर्माण डॉ० के० आर० चन्द्रा ने सन् 1987 में 'पाइयसद्दमहण्णवो' के आधार पर किया था।
9. **देशी शब्द कोश-** इसकी रचना आचार्य महाप्रज्ञ ने की है और यह जैन विश्व भारती लाडनूं से सन् 1988 में प्रकाशित हुआ है।

इसी प्रकार प्राकृत भाषा के कुछ अन्य कोश-ग्रन्थ भी आधुनिक युग में प्रकाशित हुए हैं। जैसे डॉ. उदयचन्द जैन का प्राकृत-हिन्दी-शब्दकोश और कुन्दकुन्द-कोश (वीरनिर्वाण संवत् 2517) दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। भण्डारकर ऑरियेन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना से भी के० एम० घाटगे का प्राकृत-अंग्रेजी-कोश 'ए कम्प्रीहेन्सिव एण्ड क्रिटिकल डिक्शनरी आफ व प्राकृत लेंग्वैज' नाम से प्रकाशित हो रहा है।

इस सबके बावजूद हम यहाँ जोर देकर कहना चाहते हैं कि आज एक नये प्राकृत-शब्दकोश की महती आवश्यकता है जो आधुनिक युग के अन्य भाषा के शब्दकोशें की प्रतियोगिता में शान से स्थापित हो सके। यह कोश कम्प्युटराइज्ड तो होना ही चाहिए, अच्छे कागज पर नयनाभिराम रूप में भी प्रकाशित होना चाहिए। यह कोश न तो अत्यन्त विशालकाय होना चाहिए और न ही अत्यन्त संक्षिप्त। एक या दो ही खण्डों के मध्यम आकार में सभी शब्दों को समेटते हुए निर्मित होना चाहिए, जिसमें प्राकृत भाषा के जैन एवं जैनेतेर सम्पूर्ण साहित्य से शब्दों का समावेश हो। पद्धति में वह 'पाइयसद्दमहण्णव' जैसा हो सकता है, परन्तु 'पाइयसद्दमहण्णव' तो सन् 1928 में

छपा था, जिसके बाद बहुत सारा प्राकृत साहित्य प्रकाश में आ चुका है। अतः इस नये कोश में उस साहित्य का भी उपयोग होना चाहिए।

प्राकृत भाषा का यह नवीन कोश किसी सरकारी संस्थान से प्रकाशित हो सके तो यह और भी अच्छा होगा। हम तो सुझाव देना चाहते हैं कि यदि यह श्रेष्ठ कार्य राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान ही करे तो इससे उत्तम बात और कोई नहीं होगी। इस कार्य से राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान और प्राकृत-हिन्दी शब्दकोश दोनों परस्पर एक-दूसरे की महिमा को बढ़ायेंगे। आधुनिक युग की माँग को देखते हुए इस कोश को प्राकृत-अंग्रेजी-शब्दकोश के रूप में भी प्रकाशित करना चाहिए। शब्दकोश के अतिरिक्त प्राकृत भाषा का एक साहित्य-कोश भी अवश्य तैयार होना चाहिए, जैसा कि ज्ञान-मण्डल बनारस से 'हिन्दी साहित्य कोश' प्रकाशित हुआ है। यह 'प्राकृत साहित्य कोश' भी दो खण्डों में सारग्राही शैली में तैयार किया जा सकता है। इस 'प्राकृत-साहित्य-कोश' में बिना किसी भेद-भाव के प्राकृत भाषा के समस्त ग्रन्थ और ग्रन्थकारों का संक्षिप्त परिचय संग्रहीत करना चाहिए।

सन्दर्भ-

1. जयशंकर प्रसाद, कंकाल
2. राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी काव्यधारा
3. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ 537
4. संस्कृत प्राकृत जैन व्याकरण और कोश की परम्परा (मुनि दुलहराज), पृष्ठ 345
5. आचार्य गुणधर, कसायपाहुड गाथा 86
6. प्राकृत भाषा और साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ 548
7. 'व्युत्पत्तिर्धनपालत:' - अभिधानचिन्तामणि, सोप
8. संस्कृत, प्राकृत जैन व्याकरण और कोश की परम्परा पृष्ठ 370
9. डॉ. जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ 550
10. संस्कृत प्रभूत जैन व्याकरण और कोश की परम्परा पृष्ठ 409
11. संस्कृत प्राकृत जैन व्याकरण और कोश की परम्परा पृष्ठ 372
12. पाइयसदमहण्णव, प्रस्तावना